UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180796
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81·6 / S61 Sak Accession No. G.H. 22

Author सिंह, लाल चन्द्रशेखर।

Title स्वप्नाकार। 1946

This book should be returned on or before the date last marked belov

प्रकाशक
श्री इन्दिरा प्रकाशन गृह,
खैरागढ़ स्टेट, [ई० एस० ए०]

प्रथम संस्करण
१९४६
मूल्य
१)

मुद्रक
श्री वीरेन्द्र प्रेस,
खैरागढ़ स्टेट, [ई० एस० ए०]

दो शब्द

लाल चन्द्रशेखर सिंह जी ने अपनी कविताओं का एक छोटा सा संग्रह मुझे दिखला कर यह आज्ञा दी कि मैं उसके सम्बन्ध में कुछ लिखूँ। लाल साहब से मैं कई वर्षों से परिचित हूँ। मैं यह जानता था कि हिन्दी साहित्य की ओर उनकी विशेष अभिरुचि है। पर मुझे यह बात नहीं मालूम थी कि 'विदग्ध' का नाम देकर वे कविताएँ भी लिखा करते हैं। उस दिन जब उन्होंने अपना कविता संग्रह मुझे दिखलाया तब मुझे सचमुच आश्चर्य हुआ। उस संग्रह की कई कविताओं को मैं 'सरस्वती' में पढ़ चुका था, पर 'विदग्ध' के रूप में लाल साहब मुझसे सर्वथा अपरिचित ही रहे थे। उनसे कई बार मिलकर भी मैं यह नहीं जान सका कि वे ही विदग्ध हृदय हैं।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का यह तारुण्य काल है। एलिज़ाबेथ के युग में 'सानेट' का जैसा प्रचार तत्कालीन नवयुवकों में था उसी प्रकार आजकल हिन्दी साहित्य के तरुणों में गीतिकाव्यों का प्रचार है। अधिकांश शिक्षित नवयुवक ऐसे गीतिकाव्यों की रचना कर रहे हैं जिनमें उनकी तरुणावस्था के अनुकूल रहस्यमयी प्रेमिका है। उनमें प्रेम का व्यग्रतापूर्ण उन्माद है, उनमें सुकोमल वेदना का उच्छ्वास है, उनमें कल्पना का छायामय लोक है, उनमें स्वप्न की मोहावस्था है और सर्वत्र एक मधुरता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस तरुण साहित्य ने हिन्दी साहित्य में एक नवीन मधुरता और सरसता ला दी है। पहले खड़ी बोली के काव्यों में एक कर्कशता और एक शुष्कता थी। उसमें नीति की शिक्षा थी, सेवा का उपदेश था और प्राचीन आदर्श का गौरव गान भी था। उसमें छन्द था, अलंकार था और कविता के अन्य उपकरण भी थे; पर उनमें प्राणों का आवेग नहीं था, उनमें अभिलाषाओं का स्पंदन नहीं था, उनमें विभिन्न भावों का चित्र रहने पर भी जीवन की वे मृदु

तरंगें नहीं थीं जो क्षणिक होने पर भी हम लोगों को क्षुब्ध और उद्विग्न कर देती हैं। आधुनिक युग के तरुण साहित्य में यही सब बातें हैं। उनमें गम्भीरता नहीं है, संयम नहीं है, नीति नहीं है, धर्म नहीं है, पर उनमें जो कुछ है वह उनके हृदय का क्षोभ प्रकट करता है। अधिकांश नई कवियों की रचनाओं में वेदना के अवरुद्ध अश्रु-प्रवाह और नैराश्य के उच्छ्वास हैं। न जाने कब से उनके हृदय में गुप्त वेदना की यह राशि संचित हो रही थी जो अब उनकी रचनाओं में सभी लौकिक बन्धनों को अतिक्रमण कर फूट पड़ी है। इसी प्रकार अधिकांश नवयुवकों की रचनाओं में जो अधैर्य, असंयम और उच्छृंखलता है उससे यही सूचित होता है कि उनके हृदय में न जाने कब से विद्रोह और क्रान्ति का प्रबल भाव प्रज्वलित हो रहा था। आज यही सब भाव कविता के रूप में प्रकट हो चुके हैं और होते जा रहे हैं।

लाल चन्द्रशेखर सिंह जी की भी कविता में 'मादक कल्पना' 'हृदय की यंत्रणा', 'रजनी की नीरवता' है। उसमें मनोरम छायापथ है, ममता का अभिनव आकर्षण है और प्रणय का 'स्वर्णिम सृजन' है। कवि यह अनुभव करता है कि उसका कटु जीवन मरु प्रदेश की राहों से जा रहा है। वह जीवन में सरल प्यार नहीं पा सका। उसकी साधना असफल है। नियति उसे निष्प्राण करती है। नियति का अभिशाप लेकर वह एकाकी है। एक आशा के लिए वह कितना नैराश्य ढो चुका है; पर उसे उसका शोक नहीं है। वह जग माया का बन्दी था। उसने पहले छल छाया का भेद नहीं समझा था। अब वह अपने मुक्त मानस में स्वेच्छा से चिर विषाद बो रहा है, वह विश्व के सुख को स्वयं दूर करना चाहता है। उसका अब क्रान्ति का जीवन है। जिस क्रूर बन्धन ने उसमें अविराम रोदन प्रकट किया था उसको अब वह लुप्त करना चाहता है। उसका यह लक्ष्य अब उसके बिलकुल समीप आ गया है। अब उसे विजय की ही लालसा है। वह मानवता के भीषण क्रंदन से परिचित हो चुका है। भविष्य का रूप रम्य होने पर भी उसे प्रलयंकर सा प्रतीत होता है। परिवर्तन उसको प्रलयंकर सा ज्ञात होता है। वह लौकिक जीवन का विकट ध्वान्त उसमें देखता है। पर गुप्त वेदना के इस नव नर्तन में, नियति की विकराल गति में, भूलोक के भीष्म रौरव में, वह उस दिव्य आलोक की भी आकांक्षा करता है जो संसार को जागृत कर दे। यही इस तरुण कवि का नव संदेश है।

खैरागढ़,
दीपावली, १९४६

—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

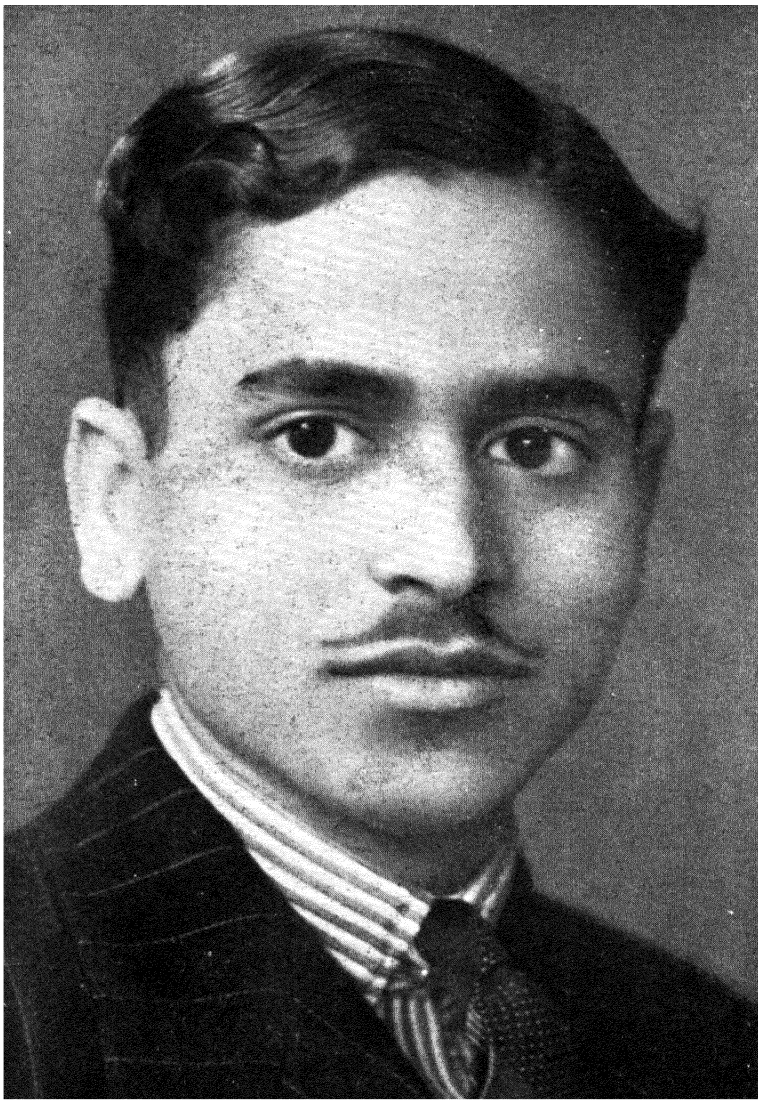

'साक्षात्कार' के कवि

उद्भास

उस अतलस्पर्शिनी प्रेरणा का विस्मरण अशक्य है, जिसे मैं अपने जीवन-प्रभात के प्रथम चेतना-काल से साथ में लिये यात्रा कर रहा हूँ ! वह प्रेरणा जिसके प्रतिबिम्ब मात्र ने सावन की प्रत्येक श्यामतम मधु-रात्रि तथा चैत की प्रत्येक चंचल चन्द्रिका में मेरी अन्तरात्मा को शान्ति व शक्ति प्रदान किया है।

आज का ही क्यों ! मेरे जीवन का कोई भी क्षण उस प्रेरणा से सम्बन्ध-विच्छेद करने का घोर प्रतिरोध करेगा जिसका अस्तित्व मेरे रक्त-कणों में सवेग प्रवाहित है।

जिसकी तारिका-नीलिमा आज भी स्नेह-निमज्जित हो उठती है, जिसका मुख-सारल्य निहारकर निर्दोष शिशु मुसका उठता है और जिसकी कुन्तल-राशि अमा और अम्बर-वासी मन्द्र-घन-घटाओं को भी रुला देने की क्षमता रखती है—अपनी उस अतलस्पर्शिनी प्रेरणा का विस्मरण अशक्य है, जिसे मैं अपने जीवन-प्रभात के प्रथम चेतना-काल से साथ में लिये यात्रा कर रहा हूँ !

—लाल चन्द्रशेखर सिंह

कवितायें	पृष्ठ
साक्षात्कार	१
जरा	
अनुशोक	२
आत्म सान्त्वना	
जिज्ञासा	३
मेरे निमिष	
मृगजल	४
जग जीवन	
आभास	५
भारत दीप	६
गतिविधि	
निष्ठुरता	७
अतीत का गीत	
अश्रु गीत	८
वैषम्य	
समाजोत्सृष्टा	९
पावस की संध्या में	
मेरा जीवन	१०
स्मृति	
जीवन मरु प्रदेश की ओर	११
पराभूत	
गति	१२
निमंत्रण	
रात का गीत	१३
विजन गीत	
अज्ञात	१४
अभ्यर्थना	
उद्घाटन	१५

अवसान
सन्ध्यावसान १६
विस्मृति
दीवाली, १६४३ १७
दर्शन
उत्पीड़िता
अन्तर २०
उत्क्रान्ति
पाणिग्रहण २१
परिणीता
वैधव्य २२
गीत
गीत २३
गीत
गीत २४
गीत २५
गीत २६
गीत
विनाश गीत २६
गीत ३०

साक्षात्कार

साक्षात्कार

आज मन लुभाया !
कब शशि प्रिय आगमन चकोर को न भाया ?
अंकित अभिनव उमंग
विकसित है अंग अंग
अमल अरुण पाटल पर अलि दल है आया।
अखिल प्रकृति तज विराग
रंजित है सानुराग
आनत दृग ने है स्मित मन्द मदिर पाया।
स्मृति ने दी एक बार
पीड़ा यौवन उभार
मानस अणु अणु में शाश्वत विषाद छाया।

जरा

आह ! आई अश्रु बनकर आज तेरी याद !

अन्त यौवन का न है असमीप,
अब बुझेगा क्षीण जीवन दीप,

हो चुका है दूर मेरा आज व्यर्थ प्रमाद।

माँगता है मन तेरी तसवीर,
पर खड़ी है क्रूरता गम्भीर,

मैं सुनाऊँ ही किसे अपनी जलन फ़रियाद ?

अनुशोक

कुछ दिनों के पूर्व मैं उस मृदु गले का हार था,
भार था तो भी अनोखा नित्य नव शृङ्गार था।

एक मादक कल्पना भी
दो हृदय की यंत्रणा थी,

एक ही इंगित हमारे पंथ का आधार था।

आज तो पथ रेणु में ही
मुँह छिपाना है मुझे ही,

कल उसी में है समा जाना, यही अधिकार था।

साधना मेरी मनोहर
बन गई मृगबल भयंकर,

प्यास दृगजल से बुझाना ही नियति का सार था।

आत्म सान्त्वना

जगती का दुख दर्द समेटे बादल तुम हो आये,
हैं मेरे ये लोचन नीरस तुम न इन्हें हो भाये।

चिर सुन्दर तुम बन जाओगे,
मेरे मन में बस जाओगे,

एक बार यदि सिखला दो तुम कैसे जल बरसाये।

जग का भ्रम मैंने पाया है,
अमर प्यास मैंने पाया है,

क्योंकि विकल चातक के स्वर हैं मेरे स्वर हो पाये।

बुझता सा अब मैं जलता हूँ,
जलने दो जल जल बुझता हूँ,

आशा है, तूफ़ानी निशि में यह जीवन बुझ जाये।

जिज्ञासा

रजनि रव में मैं तुम्हें कैसे बुलाऊँ?

आज छायापथ मनोरम
बन गया क्यों मूक निर्मम!

अश्रु कण से इन प्रदीपों को कहो कैसे बुझाऊँ?

आश श्रीहत हो चुकी है,
स्मृति सजग हो रो उठी है,

उष्ण श्वासों से प्रभंजन को सजनि, कैसे भगाऊँ?

मेरे निमिष

प्रति निमिष हम दूर ही सौ बार होंगे !

मर्म में सुमधुर तृषा लूँ,
नयन में छाया छिपा लूँ,

देख लूँ मैं तारकों में क्योंकि तुम साकार होंगे।

सुप्ति के झीने पलों में,
तुम रहो स्वप्नांचलों में,

प्रात के मादक क्षणों में तुम मृदुल नीहार होंगे।

मृगजल

जग को अब पहिचान लिया है !

उसके अन्तर स्वार्थ भाव को कुछ खोकर ही जान लिया है।

भ्रान्तिपूर्ण आशा का नर्तन,
ममता का अभिनव आकर्षण,

पर मैंने तो इस मृगजल से स्वयम् पराजय मान लिया है।

एकाकी हूं मैं जीवन में,
रहूं न माया के बन्धन में,

नीरव पथ पर मुझको चलना है, यह उर में ठान लिया है।

जग जीवन

अब न आते गीत !
सुप्त ही रह वे मधुरतम पल गये हैं बीत।

विश्व के सुख साज में ही प्राण कितने रो रहे हैं,
आश बंधन की अपरिमित वेदनायें ढो रहे हैं,
साथ में प्रतिबिम्ब सा है निज विदग्ध अतीत।

पर भला है कौन मानव शुद्ध सुख की शान्ति पाया ?
यदि हुआ विचलित सुपथ से तो सदा को भ्रांति पाया,
हो विवेक विहीन भूला प्रेम सार पुनीत।

आभास

आज वह आभास पाया !
निखिल संसृति का चराचर शाश्वत जिसमें समाया।

स्वान्त के अम्बर अतल में,
ध्वान्त से जीमूत दल में,

मृदुल कृश सौदामिनी सी शक्ति, तेरा चिह्न पाया।

मोह मायासक्ति हाला
त्यक्त कर ले त्याग माला,

वन्हि की फूत्कार भीषण में मलय का सार पाया।

उर निलय मेरा पथिक बन,
पूर्ण कर सभ्रम विवर्तन,

साधना नीहार जग मे एक निःस्वन गीत गाया।

भारत दीप

रहे तू चिर अविकल अम्लान !
दीप, निखिल जग जीवन का जब है विनाश रजनी का गान !

मृगाशाओं की झलक अमन्द
किया कब तेरे लोचन बन्द ?

पूर्ण प्रकाम बना तू अविचल गति से करता विभा प्रदान।

शत शत शलभ शिखा पर आते,
नव आशा अभिलाष जलाते,

तू भी प्रतिक्षण अणु अणु जलता, क्या यह है उत्सर्ग महान ?

पल पल में पवि हृदय प्रभंजन
देता तुम्हें पुलक या क्रंदन.

यों है तेरा जीवन चलना, यह शाश्वत विश्वेश विधान।

जीवन के मंगल प्रभात में
तेरे लघुतम शिथिल गात में

एक अपूर्व ज्योति जगकर देगी विषण्ण आलय को प्राण।

सकल सभ्य संसृति के दीपक !
निर्वापित कैसे तुम जब तक

हमें दुसह है तेरी अवनति, हमें इष्ट तेरा उत्थान।

गतिविधि

विधुर चातक की करुण पुकार !
निशीथ की नीरव बेला में जाती थी द्रुत उर के पार।
विरही निज इतिहास मग्न हो,
होड़ लगाता सावन से रो,
पर उच्छ्वास अनिल से ही होती थी आशा घन की हार।
पुनर्मिलन की नवल आश पर,
विधि के निर्मम अट्टहास पर,
निखिल सृष्टि निःशब्द हुई थी, शक्तिहीन सारा संसार।
मन्द हुआ जीवन का दीपक,
संध्या आई, विरही अलक,
दूर निम्नगा तट पर योगी गाता था, 'जीवन दिन चार।'

निष्ठुरता

मेरी सरल अर्जित आश !
हो गये हैं लुप्त तारक, शून्य हृदयाकाश।
कट रहे हैं प्रणय बन्धन,
हृदय में है करुण क्रदन,
आज सहसा पड़ गया प्रारब्ध का कटु पाश।
व्यथा से उद्वाह होगा,
व्यथा में उत्साह होगा,
विगत शत उल्लास को अब मिला चिर अवकाश।
अब न वह मृदु यामिनी है,
निम्नगा नीरव बनी है,
भटकता हूँ ले हृदय में भग्न लघु अभिलाष।

अतीत का गीत

विकल आजीवन रहा मैं !
मिलन आशालोक निर्वापित हुआ उत्सूर रविमय।

दुखद प्रावृट रजनि में बन
तुम गई थीं विजन-कानन,

सजनि, मैं भी हो गया था निज करुण इतिहास में लय।

प्रणय का स्वर्णिम सृजन कर,
मेरे उर में मदिर मधु भर,

हो गई अज्ञेय सी तुम, शून्य हो बैठा रहा मैं।

अश्रु गीत

आज कुछ जल विन्दु आये !
नव्य जीवन में प्रणय के वे दुखद सन्देश लाये।

प्राण, अब उस ओर ले चल,
हो जहाँ संसृति सुनिर्बल,

व्यथा की संध्या शिविर में रुदन का तू गान गाये।

तू नियति की भाल रेखा,
से सतत अवसन्न हो जा,

मृत्तिका में तब समा जा, जग न लघु आभास पाये।

वैषम्य

प्रेयसि अब कहाँ वे गीत !
सुखद से वे विकल क्षण अणु अणु गये द्रुत बीत।
आश बलि सूने क्षितिज पर,
वेदनायें अश्रु झर-झर,
एक स्वर में कह रहे नैराश्य की चिर जीत।
विगत शत-शत साधनायें,
हुई असफल यंत्रणायें,
किन्तु उनकी स्मृति मदिर औ' रम्य मधुर पुनीत।
हो गया पाषाण हूं मैं,
अकिंचन म्रियमाण हूं मैं,
पर बना अक्षुण्ण है मेरा सुभव्य अतीत।
आज मानस निज नियति पर
रुदन करता है निरन्तर,
गा रहा है करुण स्वर में, 'कौन किसका मीत'।

समाजोत्सृष्टा

भव्य अम्बर में पड़ी कादम्बिनी हैं कृष्ण,
हैं अतल उर के दलित संकल्प सुप्त विषण्ण।
जल रही है शुभाशा की होलिका सुविशाल,
जल रहा नवयौवना का मंजु चित्त मराल।
हो गया है निमिष में आमूल मृदु उद्यान,
ग्रहण करना है उसे अवसान का परिधान।
व्याप्त है सर्वत्र भीषण मरुस्थल विस्तीर्ण,
भस्म होने के लिये ही वह हुई अवतीर्ण।
है निराशा का उदधि ऊर्मिल अकूल अगाध,
कौन करता निस्तरण मिस अन्त मिलन अबाध !
चल रहा है निस्व जीवन, हो रहा निष्प्राण,
आज या कल है उसे करना सहर्ष प्रयाण।

पावस की संध्या में

विरह क्षण सी आकुला औ' विरहिणी सी क्लान्त
सान्ध्य बेला पी रही अनुताप है सीमान्त।
शुभ्र नभ में हो रहा है वारिदों का राज
कर उपक्रम रुदन का निःब्रीड़ है वे आज।
मन अजिर में पा गई प्रश्रय व्यथा सुकुमार
क्षुब्ध करने को महानिशि में निखिल संसार।
नियति की होगी विजय, विरही रहा है हार,
निमिष में था सुख सृजन, है निमिष में संहार!

मेरा जीवन

जग हंसे मेरे जीवन पर!
इसके दुख का व्यथा भार है मेरे ही कण कण पर।

चिर नैराश्य मिलाप निशा में
खोज थकूं मैं उसी दिशा में
जिसमें होकर भ्रान्त रो सकूँ मंजु निजत्व निधन पर।

इसी साधना में विलीन हो
लूँ अदृष्ट के क्रूर बीन को,
जिससे मेरे अश्रु नाद बन सकें अशनि क्षण क्षण पर।

स्मृति

नील अस्थिर नीरदों में विद्यु सी साकार
खिंच रही है क्या हृदय पर आज बारंबार ?
पा रहा है शक्ति स्पंदन, हो रहा गतिमान,
खोजता है धैर्य निष्फल इस निभृत में त्राण।
दे रहे हैं युग नयन हो आर्द्र हीरक हार,
विश्व में है थाम सकता कौन उनका भार ?
मधु निशा का यह शिविर है रम्य औ' रव हीन,
पर पराजित आश मेरी हो रही है दीन।
शशि किरण से जो सरित तट था हुआ सप्राण,
चिर विरह की इस अमा में हो रहा म्रियमाण।
सुप्त है अब जग निखिल मैं सुन रहा उच्छ्वास,
हो रहा है वेदना का नृत्य नव सविलास।

जीवन मरु प्रदेश की ओर

आज जा रहा यह कटु जीवन मरु प्रदेश की राहों से !
ज्ञात नहीं इसका सुख वैभव,
फिर भी याद रही नित अभिनव
इसका अथ मुसकान शुष्क था, इति होगी अब आहों से।
कहाँ पिपासा कहाँ तृप्ति अब,
हुआ नहीं उद्भ्रान्त कौन कब ?
उसने भी न कभी देखा इस ओर सुशान्त निगाहों से।
प्रथम सर्ग से इस जीवन के
समझ लिया सर्वस्व जिसे रे !
वही निकल जाये निर्मम तो फिर क्या इन मधु चाहों से ?
रह रह अन्तर का रो उठना,
रुक रुक कर पलकों का झुकना.
मरण चाहता है आलिंगन करना शीतल बाहों से।

पराभूत

मैं पा न सका इस जीवन में शिशु सा तेरा वह सरल प्यार !

वह जीवन भी क्या जीवन है
जिसका दुख सिंचित तन मन है ?

मृगतृष्णा और निराशा का ही जिसे मिला है अतुल भार।

साधना सौम्य जब असफल है,
भ्रम अविश्वास ही प्रतिपल है,

तो इस एकाकी जीवन में फिर क्यों न मिले यह सतत हार ?

लो, यह तो अन्तिम मंज़िल है,
मैं क्लान्त पथिक, पथ पंकिल है,

दो विदा, चलूँ तुमको देने विश्वास वहाँ से बार बार।

गति

चंचल मन भरमाये !
अस्थिर काया लोभ पवन में अनिश मन्द लहराये।

उतर चुका वह ज्वार प्रबल जीवन का,
हास रह गया तन में विक्षत व्रण सा,

फिर भी आशा मर्म मध्य नैराश्य भी न बन पाये।

अन्तर अतिथि न जाने कब जायेगा,
विश्व विभा कर लुप्त अनल लायेगा,

तब रह रह अधखिली कली मृदु यौवन सी मुरझाये।

निमंत्रण

मेरे सजल संचित गान !
आज तो आओ प्रवासी, क्यों बनो अनजान ?

दो घड़ी का मिलन प्रियतम,
है मेरी कांक्षा प्रबलतम,

हुई हूँ भयभीत हो जाये न अश्रु विहान !

तमिस्रा का भ्रम नहीं है,
प्रणय ज्योत्स्ना रम रही है,

आज इस रस प्राण का तुम व्रत करो अवसान।

मेरे उर की बीन तुम बन,
त्वरित भरते मधुर कंपन,

व्यथित होकर फिर सुनाते करुण नीरव तान।

रात का गीत

आज करना है मुझे प्रयाण !
मेरे जीवन की दीप-शिखा अब हुई म्लान म्रियमाण।

विभावरी की भ्रान्ति सुविस्तृत
की विभीशिका में मैं विस्मृत

एक पान्थ हूँ जिसे नियति अब करती है निष्प्राण।

तरंगिणी के भग्न पुलिन पर
आश चिता फूत्कार भयंकर,

मेरी लघु विषण्ण तृष्णा का कहाँ हुआ परित्राण ?

विजन गीत

मुझे अपनापन खोना है !
चिर विदग्ध उर का आंगन मृदुमयि, अब तम का कोना है।

नव आशा दिवसावसान पर,
भावी के भ्रमजात गान पर,

मृदु कांक्षाओं की समाधि पर आज हृदय को रोना है।

निभृत सदृश है मेरा जीवन,
अतीत की है स्मृति अपृथक घन,

सुमुखि, यही पाथेय भार अज्ञात राह पर ढोना है।

अज्ञात

शेष क्या है जो कहूँगा ?
अल्प जीवन की निराशा यंत्रणा को ही सहूँगा।

लुट चुका वह स्वर्ण जीवन,
कट चुका वह आश बंधन,

अब नियति अभिशाप लेकर विकल एकाकी रहूँगा।

जग मुझे पागल बनाता,
है हृदय दुख गीत गाता,

पर विवश हो मैं उसी अज्ञात धारा में बहूँगा।

अभ्यर्थना

आज विदा होने दो !
जीवन की सूनी संध्या में मुझे तनिक रोने दो।

मैं रुककर अपनापन खो लूँ,
प्रिय स्मृति से विक्षत उर धो लूँ,

मेरी अलसाती पीड़ा को क्षण भर मत सोने दो।

मैं बन्दी था जग माया का,
भेद न समझा छल छाया का,

अब तो मुझे मुक्त मानस में चिर विषाद बोने दो।

उद्घाटन

मैं कभी कुछ खो चुका हूँ !
एक आशा के लिये नैराश्य कितना ढो चुका हूँ।

हृदय में पीड़ा सुलाये,
नयन में जलकण छिपाये

कौन जानेगा कि कितनी मधुर निशि में रो चुका हूँ !

पर न मैं अब शोक करता,
अन्त से भी हूं न डरता,

क्योंकि मैं तो स्वयम् जीवन में अटल विष बो चुका हूँ।

अवसान

अन्त का आह्वान !
आज प्रतिपल गूँजता सम्मुख किसी का गान।

हो रहा निस्तब्ध है मन,
हो गये जलहीन लोचन,

पर भला कब कौन करता है किसी का ध्यान ?

देखने में ही जगत गति
पा चुका हूं पूर्ण अवनति,

कर चुका शत बार आमन्त्रित अयश अपमान।

सन्ध्यावसान

मंजु मृदु श्वेतांगिनी क्यों हो रही है म्लान ?
कौन सारंग विष उसे है कर रहा निष्प्राण ?
कौन गूढ़ाक्रोश जिससे है प्रतीची रक्त ?
कौन सी द्रुत गति उसे है कर रही निःशक्त ?
क्यों विहग रेखा बनी है व्योम में वाचाल ?
हो गई निःनीड़ सी है, वक्र है ज्यों नाल।
हैं रुदन के अति निकट विक्षुब्ध भू आकाश,
विश्व पीड़ा देखने का है किसे अवकाश ?
जो नदी तट था सलोना, हो गया विकराल,
है बुझाती एक पीड़ित प्यास को अब ज्वाल।
दूर पर सुकुमार छाया जा रही है कौन ?
जा रहा उस ओर मेरा कवि वियोगी मौन।

विस्मृति

कहीं कभी पहले मैंने था तुमको देखा,
मूक लोचनों में थे कण, उर में थी रेखा।
पूनो की मधुभरी निशा में तुम आये थे,
मेरे इस जीवन से फिर फिर मुसकाये थे।
शिशु सा मचल मचल उठता था मेरा जीवन,
रह रह आती घृणा, व्यथा, विक्षत अपनापन।
नीले नभ में श्वेत जलद का आना जाना,
किसी अतिथि को इन नयनों में पा मनमाना।
आशाओं ने स्वर्ण स्वप्न देखा बंधन में,
मुझे मिला संसृति का सारा वैभव क्षण में।

दीवाली, १९४३

माँ, सुपथ पर तू लगा दे!
अवनि वक्षस्थल अनय से है प्रपीड़ित,
महज्जन के तप हुये हैं आज खंडित!
क्यों न इस अन्तर्कलुष को अब भगा दे?
नमता दारुण क्षुधा से आर्त्त मानव
पा रहा भूलोक को है भीष्म रौरव,
दिव्य वह आलोक जग में अब जगा दे।

दर्शन

कर रही निर्माण है प्रिय प्रकृति, पावन प्रात !
यामिनी निद्रा रहित हो कर दिया प्रस्थान,
विश्व ने धारण किया है नव दिवस परिधान,
अरुण रंग क्यों रंग रही प्राची गगन का गात ?

शुभ्रांशु की शीतल कला का देखकर वह हास
अल्प संख्यक तारकों ने कर दिया उपहास,
स्वयम् वे भी थे हुये उस क्षण प्राकाशारात ।

है छोड़ता प्रमुदित प्रभंजन मलय मादक वाण,
प्रस्फुटित पंकज हुये जो थे बने म्रियमाण,
मिट चुका है चक्र मधुकर का हृदय आघात ।

कर दिया परित्याग खग गण ने समुद निज नीड़,
बीड़ा प्रपूर्ण प्रात नीरवता हुई अति क्षीण,
मालिन्ययुत तव निखिल सृष्टि द्रुत हुई अवदात ।

उत्पीड़िता

सघन यह नैराश्य घनावली
उर व्यथा है जाग्रत कर रही;
सृजन है विप्लव का हृदय में,
नयन में अस्थिर मुक्तावली ।

किस प्रवासी की प्रिय याद में
आज है उर गलता जा रहा;
मदिर निशि की नीरवता मुझे
आत्मविस्मृत है क्यों कर रही ?

आज क्या इस विरह विकाल में
मिलन की आशा निर्मूल है!
स्वतः वे क्यों कर जाते नहीं
प्रस्फुटित मम मानस नीरजा!

प्रणय के ही इस प्रिय पर्व में
क्षीण विप्रभ क्यों मैं हो गई!
देख सखि, है किंचित भी नहीं
कार्श्य, कोमल काम्य मयंक में।

युग सदृश हूँ यापित कर रही
प्रति निमिष इस दीर्घ वियोग का;
लेश भी अब प्रिय लगती नहीं
प्रवासी की स्वप्निल प्रीति यह।

नियति की गति अति विकराल है
यंत्रणा का अनिल अमंद है;
प्रिय नवल श्यामल कादम्बिनी
बंद सी करती हृत्कम्प है।

दुख निमज्जित हूँ मैं विरहिणी,
विदग्धा, शाश्वत, प्रेमाश्रिता;
अब असह्य हैं होते जा रहे
विघातक बिछुड़न के वाण ये।

अशनि सी है प्रतिक्षण धंस रही
व्यथित मानस में जल वृष्टि यह;
क्या न है यह दृश्य प्रवास में
जो पड़े हैं निर्मोही वहाँ!

विगत स्मृति के चित्र अनंत हैं,
कान्त हैं, अविकल, अति विकल हैं;
त्वरित चित्रित हो उर पटल पर
तृषिततम करते हैं नेत्र को।

आज की री, विरह विभावरी!
प्रवंचित कर ले इस प्राण को;
वेदना इसकी अति कठिन है,
विलग भी पल भर कैसे रहूँ!

अन्तर

अब न आकर्षण!
इस उलझते प्राण से कोई गया अनजान बन।
रूप की वह चाह अनुपम,
चाह की राहें मनोरम,
विहंसता आक्रीड़ है क्यों हो गया दुर्भेद्य वन!
मन्द स्मित की रेख सुन्दर
ने दिये कितने मधुर वर,
आज वे वर शाप हो अवसन्न करते जीर्ण मन!
प्रीति का वह विहग कोमल
उड़ गया कर मोह छल बल,
तब कहाँ वह मधु पिपासा सरल आशा आमरण!
सांझ की अवसान बेला
शून्य में पाकर अकेला
क्षुब्ध हो चीत्कार करती कांप जाता है पवन।

उत्क्रान्ति

विश्व के सुख दूर हो अब !

क्रान्ति का है आज जीवन,
मुक्ति आकांक्षा गई बन,

जन्म के इस गृह पुरातन की विवशता चूर हो अब।

थे दिये जिस क्रूर बंधन,
ने हमें अविराम रोदन,

लुप्त करने को उसे प्रारब्ध मेरे क्रूर हो अब।

लक्ष्य, तू मेरे निकट है,
विजय, तेरी मंजु रट है,

मातृभू, तू दे सुभग वर हम अवनि पर शूर हों अब।

पाणिग्रहण

मैं हूँ अब भूली !
है यह स्वर्णिम प्रात या मेरे जीवन की गोधूली।

मानवता का भीषण क्रंदन,
गुप्त वेदना का नव नर्तन,

अभिनव आशा चय पट पर चल रही निराशा तूली।

भावी, तेरा रम्य रूप यों
होता है प्रलयंकर सा क्यों !

परिम्लान क्यों जीवन लतिका जो थी फूली फूली !

परिणीता

सखि, मुझे ये दिन न भाते !
सान्ध्य ऊषा बीतती है प्रिय विरह संगीत गाते।

सुभग स्मृति साकार होकर हृदय में अब रो रही हैं,
क्यों हमारी तारिकायें वेदनामय हो रही हैं !

काश, मेरे सजल लोचन आज उनको खोज पाते।

विश्व का विस्तीर्ण वैभव है बना मेरी निराशा,
कुछ दिवस हैं आह ! बीते हो चुकी निर्बल शुभाशा,

अब न क्यों विच्छिन्न होते हैं मेरे निःशक्त नाते !

वैधव्य

आज टूटा उसका प्रिय हार !
विश्व नियन्ते, प्रसून जिसके थे उर के चिर संचित प्यार।

सुप्रासाद निभृत कुटीर है,
ममत्व चय यंत्रणा नीर है,

नलिन नयन के विवर द्वार से सृजित हो रहा पारावार।

मरु सा अब वह उराक्रीड़ है,
शशिमुख मृदु सौन्दर्य क्षीण है,

जीवन की आशा अभिलाषा का द्रुत हुआ स्फार संहार।

गीत

मृदुले, एक बार आना !
उर के प्रिय नैराश्य अभ्र में विद्युत सी मुसका जाना।

अमा यामिनी नीरव लय में
मेरे इस लघु भ्रान्ति निलय में

आना चापहीन चरणों से क्षीण विभा गाना गाना।

जीवन की अन्तिम विभावरी
में सुषुप्त जब प्राण भाव री,

तब मेरे अन्तरतम में अभिसार स्वप्न सी कर जाना।

गीत

आ गई बरसात !
आज मेरा हृदय कंपन क्यों न दे आघात !

निराशा के एक इंगित
पर विरह सागर तरंगित,

क्षितिज पर उच्छ्वास मेरे कर रहे जलपात।

स्मृति मुझे पाकर अकेला
ला रही है शोक बेला,

क्यों न होगी कल्प सी शशिहीन अब यह रात !

गीत

मन, तुम्हें क्यों तोड़ लेता ?
विश्व के झूठे सहारे यदि प्रथम मैं जान लेता।

स्वार्थ में मानव सड़े हैं,
निज विभव में ही पड़े हैं,

दुर्दिवस में कौन किसका, यदि इसे मैं जान लेता।

कौन निज सुख त्याग देगा !
पीड़ितों को शान्ति देगा,

प्रेम तो विषपूर्ण माया, यदि इसे मैं मान लेता।

गीत

मैं उस पथ पर जाऊँ !
प्रिय पदचाप प्रतीक्षा में निज को प्रस्तर सा पाऊँ।

स्वाति विन्दु सी तुम अनन्त में,
चिर विदग्ध हो मैं दिगन्त में,

शान्तिहीन जीवन में रो रो चातक स्वर में गाऊँ।

कठिन यातना के विकाल में
मिलें चार पल, मृदुल काल में

निशीथ की नीरव मादकता में मैं तुम्हें मनाऊँ।

गीत

सरले, आज की यह रात !
मर्म पर स्मृति कर रही है मधु असह्य आघात।

वही शशि निर्मल गगन में,
वही ज्योत्स्ना रम्य वन में,

वही नीरवता जगत की, किन्तु तुम आरात।

व्यथित उर उच्छ्वास भर भर,
निराशा की दाह लेकर,

प्रतिनिमिष है दग्ध करता यह प्रकम्पित गात।

अल्प दिन सुख के बिता कर,
काटता हूँ दुख निरन्तर,

दिवस यों कितने कटेंगे यह मुझे अज्ञात।

मुग्ध स्मृति रवहीन होकर
बन गई है स्वप्न सुन्दर,

किन्तु कुछ क्षण बाद होगा शान्तिहीन प्रभात।

सुप्त है यह विश्व निर्मम,
अब निशा है लघु मनोरम,

पूर्ण पर कैसे करूँ इतिहीन अपनी बात।

गीत

प्रियतमे, हूँ स्मृति शरण मैं !
मृत्यु शैया में न भी कर सकूँ तेरा विस्मरण मैं।

रूढ़ियों की जल लतायें
सघन हैं, अविदित दिशायें,

किस प्रकार करूँ प्रिये, जीवन तरणि का निस्तरण मैं ?

वे दिवस थे मृदु मिलन के,
ये दिवस अविरत असुख के,

चिर विरह में काटता हूँ अकेला अविराम क्षण मैं।

चन्द्र की शुचि चन्द्रिका में
सुप्त हैं मानव व्यथायें,

पर व्यथा ज्वाला जला कर कर रहा हूँ जागरण मैं।

निराशा मुझमें समाये,
यह हृदय दुख गीत गाये,

तव मिलन के लिये बन जाऊँ अशेष अबाध्य कण मैं।

विश्व से वरदान लेकर,
पंचता में व्याप्त होकर,

चूम ही लूँगा तुम्हारे प्रिय तरोरुह श्रीचरण मैं।

गीत

प्रथम वर्षा प्यार !
मंजुले, सुकुमार था वह सुनहला संसार।

मैं न मेरा हृदय रोता,
भाग्य मेरा धन्य होता,

स्वप्न ही देता तुम्हारा यदि दिखा शृंगार।

क्षीणतम अस्तित्व मेरा
भी न कर पाये सबेरा,

प्राण मेरे उड़ चलें इस लघु जगत के पार

विनाश गीत

सुरभि आई थी।
आम्र पादप को दिया उन्माद,
दीर्घ स्पन्दन,
चिर सुस्मृति,
भरा था अभिनवोल्लास।

आम्र तरु ने भी मुदित मन
दिया था प्रतिदान,
किया ऋतुपति ने अव्यक्त
सुरभित वल्लरी पान।
वह था परिष्कृत प्रतिप्रेम प्रदर्शन !

२

तरुवासिनि उर उठी हूक,
विश्व ने किया कर्णगोचर
'कुहू   कुहू',
प्रिय पंचम स्वर में।

दीन जग को हुई आशा,
किया उसने परित्याग
अविषाद स्वप्निल श्वास,
हुआ नितान्त निश्चिन्त।

३

किन्तु अम्बर था कुटिल,
ईर्ष्यालु, अपकर्षाकांक्षी,
उत्थान हुआ था असह्य उसे।

लिया था उसने उष्णोच्छ्वास,
दिया सत्वर आदेश,
कर लिया संकलित सकल जलद दल,
नीरव प्रशान्त सन्ध्या ने
था किया आमन्त्रित शर्वरी।

४

निशा थी सुप्तावस्थित
शनैः शनैः करती प्रयाण।
अन्तरिक्ष कादम्बिनी
होकर निर्मम, निष्ठुर, निशंक

निज तीक्ष्ण सलिल धार से
बना रही थी
मधुमय मंजरी गुच्छ
म्रियमाण !

अंशुमाली हो आविर्भूत
किया स्वर्णिम प्रभात निर्माण,
वल्लरी पुंज थे
निष्प्रभ, निष्प्राण, निस्सार;
जगत ने किया प्राप्त जागृति,
विषाद, निराशा, हाहाकार !

५

प्रलयंकर था परिवर्तन !
सर्वत्र शोक प्रसार,
निखिल विकल अन्तस्थल
था
भग्नाश निलय।

आशा मृदुलाशा पतन।
क्या यही है विश्वेश विधान ?
विघने, तेरा अभिधान मात्र
लौकिक जीवन का
विकट ध्वान्त !
महा ह्रास !!
अविकास !!!

गीत

स्मृति, मदिर स्मृति !
मम नीरव जीवन संगिनि !!
कर रहा हूँ तेरा आह्वान।
सूक्ष्म विचार वर्णिका ले
मम तृषित नयन पट पर
कर एक बार अंकित
अतीत का चित्र चयन।

री, मधुर स्मृति !
तेरे अनन्त भग्नाणु
कर रहे हैं अब अनिश द्वंद्व
मेरे प्रत्यय उन्मेषों से
मेरे ही स्वान्त प्रकोष्ट में।

२

आ, आ, स्मृति देवि !
ला अतीत के मधुर मिलन,
सुखद क्षण,
क्षणिक सुख,
प्रिय संलाप,
प्राणप्रिय सजीव चित्र।

किन्तु आह ! मैं पाता हूँ
अपने भावों का करुणालेख्य

अपने ही हृदय पटल पर।
बता दो धीरे से मुझको
क्या तुम हो मेरे करुणाख्यान ?

३

करुणे, प्रिय करुणे, तुम
मेरे जीवन की अविच्छिन्न
सुविशद हो छाया।
क्या शक्य कभी जीवनोपभोग,
जलहीन मत्स्य, बिन दिवस निशा
अथवा अजीव नर काया ?

पूर्ण सुप्त हो मम अन्तर में कर लो संगिनि, चिर विश्राम;
मुझे विजन की राह दिखाकर
करना नहीं करुण प्रस्थान।